

हिंदू धर्म के पुनरुत्थान में आदि शंकराचार्य का योगदान

सतीश कुमार भारद्वाज

सारांश

साधु-संतों की पुण्य-भूमि भारतवर्ष में मानव-उत्थान और उसके परिष्कार को सदैव महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। इस पावन भारतभूमि पर अनेक संत अवतरित हुए हैं जिन्होंने अज्ञानता के अंधकार में डूबे मानव को एक नई दिशा दिखाई। इस गौरवशाली संत परंपरा में आदि शंकराचार्य का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है जिन्होंने हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान किया। भारत को विश्वगुरु बनाने में आदि शंकराचार्य का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विभिन्न विद्वानों ने उन्हें वैदिक धर्म का पुनर्प्रतिष्ठापक कहा है। उन्होंने 32 वर्ष की अल्पायु में ही अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना करके अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को स्थापित किया। उन्होंने अपने तर्कपूर्ण और अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि वैदिक धर्म ही सभी धर्मों और संप्रदायों से श्रेष्ठ है। उन्होंने सभी प्रकार के आवरणों को हटाते हुए वेदान्त दर्शन को पुनर्प्रतिष्ठित करते हुए अद्वैत वेदांत का सिद्धांत दिया। यह सिद्धांत आज भी भारतीय दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस प्रकार उन्होंने हिंदू समाज को जाग्रत करके मृतप्राय हो चुके वैदिक हिंदू धर्म को पुनर्स्थापित करने में ही अपना सारा जीवन न्यौछावर कर दिया। प्रस्तुत आलेख में हिंदू धर्म के पुनरुत्थान में आदि शंकराचार्य के योगदान पर प्रकाश डालने का एक लघु प्रयास किया गया है।

भारतवर्ष सदैव ही साधु-संतों की पुण्य-भूमि रहा है। संतों ने मानव-उत्थान और उसके परिष्कार की दिशा में निरंतर अतुलनीय कार्य किया है। इस पावन भारतभूमि पर समय-समय पर अनेक संत अवतरित हुए हैं जिन्होंने अपनी दिव्य वाणी से घोर नैराश्य में डूबे जनमानस के लिए संजीवनी का कार्य किया और अज्ञानता के अंधकार में डूबे मानव को एक नया प्रकाश दिया। महान संतों की इस गौरवशाली परंपरा में आदि शंकराचार्य का नाम अत्यंत आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है जिन्होंने वैदिक हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में विशिष्ट भूमिका निभाई। भारत को विश्वगुरु बनाने में जिन महान ऋषियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें शंकराचार्य का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विभिन्न आचार्यों में उन्हें सर्वोपरि रखते हुए उन्हें वैदिक धर्म का पुनर्प्रतिष्ठापक कहा जा सकता है। प्रस्तुत आलेख में हिंदू धर्म के पुनरुत्थान में आदि शंकराचार्य के योगदान पर प्रकाश डालने का एक लघु प्रयास किया गया है।

शंकराचार्य अद्वितीय प्रतिभा और अलौकिक शक्तियों के स्वामी थे। अपनी विलक्षण प्रतिभा से अल्पायु में ही समस्त शास्त्रों का ज्ञान अर्जित करके उन्होंने अनेक महान मौलिक ग्रन्थों की रचना की और वैदिक ग्रन्थों का भाष्य किया तथा भारत की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना करके हिंदू धर्म-पताका को संपूर्ण भारतवर्ष में फहराया। उन्होंने पतनशील वैदिक धर्म की रक्षा

और समाज के लोगों को सदाचारी और धार्मिक बनाने के लिए अनेक मंदिरों की स्थापना और पुनरुद्धार का कार्य किया जो आज भी संपूर्ण भारतवर्ष में हिंदू धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। उनकी साहित्यिक रचनाओं का संपूर्ण विश्व में सम्मान किया जाता है जिनमें उनकी मौलिक रचनाएँ व भाष्य दोनों सम्मिलित हैं। भारतीय दर्शन और संस्कृति के विकास में उनके योगदान का विशिष्ट महत्व है।

भारतीय संस्कृति को प्राचीनतम माना जाता है और धर्म आरंभ से ही इसका प्राणतत्त्व रहा है। इसमें अन्य संस्कृतियों के गुणों को भी आत्मसात करने की विशिष्टता सदैव विद्यमान रही है। इसी कारण समय-समय पर इसके मूल स्वरूप में परिवर्तन और विकृतियाँ भी आते रहे हैं और उन्हें दूर करने के लिए महापुरुषों का अभ्युदय भी होता रहा है। शंकराचार्य का संपूर्ण जीवन लोक-कल्याण के प्रति समर्पित होने के कारण उन्होंने सामाजिक जीवन में रुढ़िवादिता और बाह्य-आडंबरों का विरोध करके वैदिक हिंदू धर्म की प्राचीन मान्यताओं व परंपराओं को पुनः सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रकृति पर आधारित सादगीपूर्ण और सात्विक जीवन को अपनाने के लिए उन्होंने लोगों को प्रेरित किया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्टता से जनमानस के समक्ष रखा और इनकी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने का महान कार्य किया। आश्रम-व्यवस्था के अंतर्गत उन्होंने शिक्षा की गुरुकुल पद्धति और वेद-शास्त्रों के शिक्षण को सर्वाधिक महत्व दिया। उन्होंने जाति-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए षोडश संस्कारों का भी विस्तृत विवेचन किया। उन्होंने धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि धर्म के अनेक स्वरूप होने पर भी मूल तत्व एक ही है। साथ ही कर्मफल के सिद्धांत और यज्ञ के महत्व को भी जनमानस के समक्ष स्पष्टता से रखने का सफल प्रयास किया।

हिंदू धर्म के विभिन्न संप्रदायों में समन्वय स्थापित करके मंदिरों और मठों के निर्माण व पुनरुद्धार के कार्य में भी उनकी विशेष भूमिका रही। हिंदू धर्म के ह्रास को रोकने और प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अनेक राजाओं का भी सहयोग प्राप्त किया ताकि धर्मांतरण को रोककर हिंदुओं को जाग्रत किया जा सके। उन्होंने भारतीय दर्शन के गूढ़ सिद्धांतों की सरल व्याख्या करके उन्हें साधारण जनता तक पहुँचाकर हिंदू धर्म की श्रेष्ठता को पुनः स्थापित किया। उपनिषदों और गीता के भाष्य इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। भारतीय संस्कृति और वैदिक हिंदू धर्म के पुनरुत्थान के अलावा उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि अपने लेखन द्वारा संस्कृत भाषा को सुसंपन्न करके उसके गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करना और भाष्य-लेखन की कला को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करना है। उन्हें भाष्य-कला का जन्मदाता माना जाता है। उनके 'अद्वैत वेदांत' के सिद्धान्त को वैदिक धर्म का सार कहा जा सकता है। शंकराचार्य के हिंदू धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए किए गए विराट प्रयासों को एक आलेख में समेटना संभव नहीं है। तथापि इस पर एक विहंगम दृष्टि डालने का एक लघु प्रयास किया जा रहा है।

आदि शंकराचार्य के योगदान को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों पर ध्यान देना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। उस समय राजनीतिक अस्थिरता अपने चरम पर थी। अंतिम हिंदू सम्राट हर्षवर्धन के बाद भारतवर्ष का विघटन प्रारंभ हो गया था। शासकों के पारस्परिक द्वेष और सत्ता-संघर्ष ने राष्ट्रीयता की भावना को नष्ट कर दिया था और मुस्लिम आक्रमणकारी निरंतर हमले कर रहे थे। वर्ण और जाति व्यवस्था में भी अनेक विकृतियाँ आ चुकी थी। हिंदू धर्म में

संकुचित मानसिकता के कारण ऊँच-नीच और भेदभाव को बढ़ावा दिया जा रहा था। धार्मिक दृष्टि से भी यह संकट का युग था और हिंदू धर्म में ही अनेक मत प्रचलित थे जिनके कारण निरंतर संघर्ष बना रहता था और अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गई थी। अवैदिक मतों और वैदिक धर्म के बीच निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी हुई थी।

उस काल में वैदिक धर्म अपनी दुरुहता और कर्मकांड प्रधानता के कारण समाज में अपना महत्व खोता जा रहा था और बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त तथा अन्य संप्रदायों के चमत्कारपूर्ण प्रभाव के द्वारा लोगों को वैदिक धर्म के प्रति भ्रमित किया जा रहा था। वैदिक धर्म बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, तांत्रिक आदि अनेक शाखाओं में विभाजित हो चुका था और वेद, उपनिषद, यज्ञ आदि तिरस्कृत हो रहे थे। बौद्धों और जैनों ने वैदिक कर्मकांड की निंदा करना आरंभ कर दिया था और ब्राह्मण उनके तर्कपूर्ण प्रत्युत्तर देने में असमर्थ सिद्ध हो रहे थे। अनेक प्रकार की तांत्रिक साधनाएँ प्रचलित थी जिनमें अध्यात्म के स्थान पर भोगों को महत्व दिया जाने लगा था। इसके अलावा मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा इस्लाम के प्रचार के लिए किए गए अत्याचारों ने भी समाज में निराशा का भाव जगाया। इसे सामाजिक-धार्मिक दृष्टि से संक्रमण काल कहा जा सकता है। धार्मिक दृष्टि से संघर्षों के इस काल में सामान्य जनमानस के लिए वेदों की सरल भाषा में व्याख्या करना और कर्मकांडों की सार्थकता को तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट करना उनकी विशिष्ट उपलब्धि कहा जा सकता है।

तत्कालीन समाज में फैली वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था और सामाजिक परम्पराओं की विकृतियों को दूर करने के लिए उन्होंने ऐसे अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए जिससे विखंडित हिंदू समाज पुनः एकजुट हो जाए और प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के महत्व को समझते हुए उसके अनुसार आचरण करे। हिंदू धर्म बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त आदि अनेक मतों में विभक्त होकर अपने-अपने आचार-व्यवहार को प्रचारित कर रहा था और मूल वैदिक धर्म लुप्त होता जा रहा था। शंकराचार्य ने इस पर गंभीरता से विचार किया और चमत्कारपूर्ण और तांत्रिक क्रियाओं से दिग्भ्रमित हिंदुओं को वैदिक परम्पराओं का अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने उस समय प्रचलित रूढ़ियों का विरोध करते हुए जनकल्याण से संबंधित प्राचीन मान्यताओं और परम्पराओं के महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्हें अपनाने के लिए लोगों को प्रेरित किया।

उस समय प्रचलित आश्रम व्यवस्था में मानव जीवन के चारों आश्रमों की आयु 25-25 वर्ष निर्धारित की गई थी। उन्होंने इन प्रचलित रूढ़ियों को उन्होंने चुनौती दी और प्रत्येक आश्रम के लिए पच्चीस वर्ष की आयु निर्धारित करने को अमान्य करते हुए कहा कि ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए आयुसीमा निर्धारित करना अनुचित है क्योंकि अपनी विशिष्ट योग्यताओं से कम आयु में भी उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त करके शेष समय समाज की सेवा में लगाया जाना चाहिए। उन्होंने गृहस्थ आश्रम की अनिवार्यता को भी स्वीकार नहीं किया और स्वयं अपने उदाहरण द्वारा सिद्ध किया कि शिक्षा प्राप्त करके सीधे ही संन्यास आश्रम भी ग्रहण किया जा सकता है। संन्यासी द्वारा अपने माता-पिता का अंतिम संस्कार न करने की परंपरा को तोड़ते हुए उन्होंने अपनी माता का अंतिम संस्कार करके उनकी इच्छा को पूर्ण किया। ऐसी ही अनेक रूढ़िवादी परंपराओं का उन्होंने तर्कपूर्ण खंडन किया।

हिंदुओं में प्राचीन काल से ही वर्ण-व्यवस्था का प्रचलन रहा है जो तत्कालीन समाज में

जैन व बौद्ध धर्म के प्रभाव से पतन की ओर अग्रसर थी। इस व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने में भी शंकराचार्य ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों और भाष्यों में इसकी सार्थकता व उपयोगिता को प्रतिपादित करते हुए इसे समाजहित में आवश्यक माना। लेकिन वे इसके जटिल स्वरूप के स्थान पर लचीले स्वरूप को महत्व देते थे जिसमें किसी भी वर्ण में जन्मा व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है और उसी आधार पर उसे समाज में प्रतिष्ठा मिले अर्थात् उन्होंने जन्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था को महत्व न देकर कर्म के आधार पर महत्व दिया जो उस समय उनकी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। उन्होंने उपयुक्त तर्कों द्वारा अपना पक्ष रखते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति में कर्मों के आधार पर ही मनुष्य का जन्म होना माना गया है अर्थात् सुकर्मों से श्रेष्ठ वर्ण में और दुष्कर्मों से निम्न वर्ण में जन्म होता है। उन्होंने अनेक विद्वानों के उदाहरण प्रस्तुत किए जो निम्न वर्ण में जन्म लेने के बावजूद अपने ज्ञान के कारण समाज में अत्यंत सम्मानित हुए। इससे उस समय सामाजिक समरसता स्थापित करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली।

उन्होंने ज्ञान को सर्वोपरि मानते हुए भी कर्म की अनिवार्यता को महत्व दिया और निष्काम कर्म करने वाले गृहस्थ को कर्मों का त्याग करने वाले संन्यासी से श्रेष्ठ मानते हुए कहा है कि कर्म कभी भी निष्फल नहीं जाते। कर्म का महत्व बताते हुए उन्होंने कहा कि स्वधर्म का पालन करते हुए सभी को अपने-अपने कर्म करने चाहिए ताकि आपसी संघर्ष और प्रतिस्पर्धा के बजाए सहयोग और सहिष्णुता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। उन्होंने कहा कि शूद्र भी यदि ज्ञानी है तो वह ब्राह्मण और क्षत्रिय से श्रेष्ठ माना जाएगा। उन्होंने उपनिषदों के उदाहरण देते हुए कहा कि ज्ञान ही मनुष्य के जीवन को आलोकित करता है और इसके लिए निरंतर अध्ययनशील रहना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि योग्य और सुपात्र को ही ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए और इसके लिए स्त्री-पुरुष, जाति-धर्म, संप्रदाय आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने सत्यकाम जाबाल, गार्गी, मैत्रेयी, अजातशत्रु सहित अनेक लोगों के उदाहरण भी दिए। तत्कालीन रूढ़िग्रस्त समाज में उनकी यह उद्घोषणा अत्यंत महत्वपूर्ण थी जिसने सभी के लिए ज्ञान और धार्मिक कर्मकांडों के मार्ग को खोल दिया।

उन्होंने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए कहा गीता का उदाहरण देते हुए कहा कि इसमें मनुष्य जन्म को दुर्लभ बताया है और कहा है कि अपने पूर्वजन्म के पुण्यकर्मों से ही ब्राह्मण कुल में उत्पत्ति होती है। इस प्रकार यहाँ भी पुण्यकर्मों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए उसे ही ब्राह्मण माना है जो विद्या और विनय से युक्त हो, चाहे वह किसी भी वर्ण में उत्पन्न हो। इससे समाज को पुण्यकर्मों में प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिली और विभिन्न वर्णों में जन्मे व्यक्तियों को कर्मों द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का अवसर मिला। उन्होंने शूद्रों द्वारा अन्य तीनों वर्णों द्वारा दिए गए कार्यों को करने के कारण सर्वाधिक पुरुषार्थी मानते हुए उनके महत्व को भी प्रतिष्ठापित किया। इस प्रकार जिन शूद्रों को तत्कालीन समाज में हीन माना जाता था, उनके कार्यों को महत्व देते हुए शंकराचार्य ने उनके प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव को अनुचित माना।

उन्होंने वैदिक कर्मकांड की उपयोगिता को सिद्ध करने के लिए अनेक अकाट्य तर्क दिए और उनकी गरिमा को पुनः स्थापित किया। उन्होंने कर्मकांडों के दुरुह रहस्यों को सरल भाषा में जनमानस तक पहुँचाने का कार्य किया और चमत्कारपूर्ण तांत्रिक क्रियाओं का विरोध भी किया। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में भी उन्होंने वैदिक साहित्य के पठन-पाठन को महत्वपूर्ण मानते हुए

वेदाध्ययन को ब्रह्मविद्या कहा था। उन्होंने यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म मानते हुए उसे ईश्वर के समान माना और देवताओं को प्रसन्न करने के साथ-साथ विभिन्न रोग-व्याधियों के उपचार में भी यज्ञ को सहायक माना। इसके अलावा उन्होंने दान के महत्व को भी पुनर्स्थापित करते हुए इसमें आई विकृतियों को दूर किया और इसके लिए कुछ नियम सुनिश्चित किए और सदगृहस्थों को इसके लिए प्रेरित भी किया।

तत्कालीन समाज में तांत्रिक क्रियाएँ और बलि देने जैसे दुष्कृत्य प्रचलित थे और मंत्र-जप, पूजा-पाठ, कर्मकांड, अनुष्ठान आदि का महत्व कम होता जा रहा था। शंकराचार्य ने ऐसी कुप्रथाओं का विरोध किया और कर्मकांडों के वास्तविक अर्थ को जनमानस तक पहुँचाया। उन्होंने सकाम और निष्काम दोनों प्रकार की उपासना पद्धतियों का विस्तृत वर्णन करते हुए तांत्रिक और चमत्कारपूर्ण क्रियाओं का खंडन किया। उन्होंने उपनिषदों के अनेक उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि मनुष्य को उसके कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है और वैदिक धर्म ही भटके हुए मनुष्य को अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जा सकता है। अन्य संप्रदायों के चमत्कारपूर्ण प्रभाव के द्वारा लोगों में वैदिक धर्म के प्रति जो भ्रम फैलाया जा रहा था, उसे भी उन्होंने अपने तर्कों से दूर किया।

पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि तत्कालीन समाज में हिंदू धर्म अलग-अलग संप्रदायों में बंटकर विकृत होता जा रहा था। इन संप्रदायों का स्वरूप भिन्नतापूर्ण था और विविधतापूर्ण मान्यताएँ बढ़ती जा रही थी जिससे वैदिक धर्म का मूल स्वरूप नष्ट होता जा रहा था। बौद्ध, जैन, चार्वाक, शैव, शाक्त, वैष्णव, तांत्रिक, कापालिक, पाशुपत, आजीवक आदि संप्रदाय अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में लगे थे जिससे हिंदू समाज में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई थी। शंकराचार्य ने इनमें आई विकृतियों को दूर करने के लिए अनेक संप्रदायों के आचार्यों की चुनौती को स्वीकार करते हुए तर्कपूर्ण अकाट्य प्रमाण देकर उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित किया और मूल वैदिक धर्म की मान्यताओं को पुनः स्थापित किया। इनमें शारदापीठ (कश्मीर) के पंडितों, मंडन मिश्र और उनकी पत्नी भारती, रामेश्वरम में मद्यप ब्राह्मणों, विदर्भ के भैरव मतानुयायियों, कापालिकों, शैवाचार्य नीलकंठ, द्वारका के वैष्णवों, अनेक जैनाचार्यों, बौद्धाचार्यों और तांत्रिकों आदि को शास्त्रार्थ में पराजित करके अपना शिष्य बनाया। उन्होंने शास्त्रार्थ में सभी को पराजित करके वैदिक धर्म के मूल तत्वों को पुनः प्रतिष्ठित किया और इसका प्रचार-प्रसार किया।

इसके अलावा उन्होंने हिंदू धर्म के पुनरुत्थान में राजशक्तियों का भी सहयोग लिया क्योंकि किसी भी धर्म के प्रचार-प्रसार में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सम्राट अशोक व अन्य शासकों द्वारा बौद्ध धर्म को संरक्षण देकर उसके देश-विदेश में प्रचार करने के लिए किए गए विशेष प्रयास इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। इसीलिए उनके शिष्यों में अनेक राजा भी थे जो उनके आदेशों का पालन करते थे और अनेक धार्मिक यात्राओं में उनके अनुयायियों सहित वे भी उनके साथ चलते थे। उन्होंने कभी किसी से सहायता के लिए याचना नहीं की, बल्कि उनके तर्कपूर्ण शास्त्रार्थ से प्रभावित होकर और धार्मिक विकृतियों को दूर करने के लिए वे स्वयं उनका अनुगमन करते थे। वैदिक धर्म की ध्वजा लेकर सभी संप्रदायों को तर्कपूर्ण ढंग से चुनौती देने का साहस उन्होंने अकेले ही किया और सभी मतों को सम्मान देते हुए प्राचीन वैदिक धर्म को अपने अकाट्य तर्कों से सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया व इसकी महत्ता के सम्मुख नतमस्तक होने के लिए उन्हें बाध्य कर दिया।

उनके समय में हिंदू मंदिरों और मूर्तियों को खंडित करके अपवित्र करने का कार्य भी अनेक संप्रदायों द्वारा किया जा रहा था, जिसमें अनेक विदेशी शक्तियाँ भी सम्मिलित थी। अनेक मंदिरों के पुजारियों ने मूर्तियों को अपवित्र होने से बचाने के लिए जलसमाधि तक दे डाली थी और उनकी पूजा-पद्धतियाँ भी प्रभावित हो रही थी। उन्होंने देश के अनेक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थलों और मंदिरों की मूर्तियों को अपनी दिव्यशक्ति से खोजकर जलकुंडों से बाहर निकालकर उनकी पुनर्स्थापना करके हिंदुओं की पूजा-पद्धति को पुनः आरंभ करवाया। उन्होंने इस्लाम सहित अन्य धार्मिक मतावलंबियों को अपने तर्कों से निरुत्तर करके हिंदू धर्मांतरण को रोकने और इसे प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उस समय हिंदुओं की निराशा के दो प्रमुख कारण थे— एक तो विभिन्न संप्रदायों की ज्ञान और मोक्ष की जटिल परिभाषाओं और विकृत हो रही पूजा-पद्धतियों ने लोगों में निराशा के भाव भर दिए थे, दूसरे तांत्रिकों और कर्मकांडियों ने आम जनमानस को भयाक्रांत कर रखा था। शंकराचार्य ने उनमें आशा का संचार करते हुए वैदिक हिंदू धर्म की तर्कपूर्ण और सरल भाषा में व्याख्या करके उन्हें पुनः भक्तिमार्ग की ओर प्रेरित किया, जो उस समय एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य था। उन्होंने साकार और निराकार दोनों ही उपासना पद्धतियों का समर्थन किया और कहा कि निराकार ब्रह्म की उपासना का मार्ग साकार उपासना द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने विलुप्त हो रही पूजा-पद्धतियों, जप-तप, ध्यान, अनुष्ठान, दान, व्रत-उपवास आदि के महत्व को पुनर्प्रकाशित करते हुए इन्हें लौकिक व पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों के लिए उपयोगी बताया।

उनके अनुसार सभी जीवों में एक ही आत्मा विद्यमान है, इसलिए किसी से भी भेदभाव न करके सभी के कल्याण का प्रयास करना चाहिए। व्यक्ति को जाति, धर्म, संप्रदाय आदि के आधार पर अलगाव के स्थान पर समरसता स्थापित करने का भाव विकसित करना चाहिए ताकि किसी भी आधार पर सामाजिक वैमनस्य को महत्व न मिले। उन्होंने गीता, उपनिषदों आदि के भाष्य करके उन्हें सरल भाषा में जनमानस तक पहुंचाया और लोगों में फैले हुए भ्रामक विचारों का निवारण करके उनकी शंकाओं का निराकरण किया। उन्होंने ब्रह्म और जीव के भेद को सत्य न मानते हुए मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य जीवनमुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाना माना है। जिस प्रकार सभी नदियां अपने स्वरूप का त्याग करके सागर में समा जाती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी भी अपने भौतिक शरीर को त्याग कर और इस मिथ्या जगत को छोड़कर ब्रह्म में ही समा जाता है। अपने इस शुद्ध स्वरूप के ज्ञान को ही उन्होंने भक्ति कहा है।

उन्होंने ब्रह्म को एकमात्र पूर्ण सत्य मानते हुए इसे अद्वैत कहा है। ब्रह्म के अलावा किसी अन्य सत्ता को सत्य न मानने के कारण ही उनके दर्शन को अद्वैतवाद कहा जाता है। उन्होंने जीव और आत्मा में अभेद मानते हुए इन्हें एक ही वस्तु के दो नाम कहा है। उन्होंने प्रतिबिंब की उपमा द्वारा जीव और ब्रह्म के संबंध को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार एक ही चंद्रमा का प्रतिबिंब जल की विभिन्न सतहों पर पड़ने से वह अनेक दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्म का प्रतिबिंब अविद्या रूपी दर्पण पर पड़ने से वह अनेक दिखाई देता है। उनके अनुसार मोक्ष की अवस्था में जीव ब्रह्म से एकाकार हो जाता है और अज्ञानता के कारण उनमें जो द्वैत रहता है, उसका अंत हो जाता है। उन्होंने इस संपूर्ण जगत को स्वप्न की अनुभूतियों के समान मानते हुए कहा है कि ज्ञान के जाग्रत होने पर हमें वास्तविकता का बोध हो जाता है। इसी प्रकार अनेक

सरल उदाहरणों द्वारा उन्होंने वेदांत दर्शन के गूढ़ रहस्यों को भी सामान्य जनता के लिए ग्राह्य बना दिया।

वैदिक धर्म के वास्तविक स्वरूप को जनमानस तक पहुँचाने के लिए उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष की यात्राएँ की और भारत की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की जिसमें पूर्व में गोवर्धन मठ (जगन्नाथ पुरी धाम), पश्चिम में शारदा मठ (द्वारिका पुरी धाम), उत्तर में ज्योतिर्मठ (बदरी नारायण) और दक्षिण में शृंगेरी मठ (मैसूर रियासत) सम्मिलित हैं। इनके माध्यम से वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अपने चार प्रमुख शिष्यों पद्यपाद, सुरेश्वराचार्य, हस्तामलक और तोटकाचार्य को इन मठों का प्रधान बनाया ताकि आगे इसमें किसी प्रकार की विकृतियाँ न आ सकें। इसके लिए उन्होंने संन्यासियों में समन्वय स्थापित करने का उल्लेखनीय कार्य भी किया और इनके माध्यम से धर्म-प्रचार का कार्य किया। तत्कालीन समय में जब प्राचीन हिंदू धर्म पतन की ओर अग्रसर था, उन्होंने सभी संप्रदायों की कमियों और विकृतियों को प्रकट करते हुए वैदिक धर्म के विशुद्ध स्वरूप को जनमानस तक सरल भाषा में पहुँचाकर एक उल्लेखनीय कार्य किया।

उनके द्वारा रचित साहित्य का भी वैदिक धर्म और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने अल्पायु में ही ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य, उपनिषद् भाष्य, विष्णु सहस्रनाम आदि अनेक ग्रन्थों की रचना करके जनमानस तक गूढ़ रहस्यों को सरल भाषा में पहुँचाया। भाष्य-लेखन कला का तो इन्हें जन्मदाता ही माना जाता है। उनका उपनिषदों और गीता का भाष्य आज भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि श्लोकों के अर्थ बताने के साथ-साथ सरल भाषा में विस्तार से उनकी व्याख्या भी की और कथाओं व आख्यानों द्वारा विषय को स्पष्ट भी किया जो जनमानस के लिए सहज ही ग्राह्य बन गया। इसके साथ-साथ उन्होंने संस्कृत भाषा को भी पुनर्जीवन प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। संस्कृत की गद्य और पद्य दोनों शैलियों का प्रयोग करते हुए गंभीर एवं दुरुह विषयों को भी सरल और विशिष्ट रोचक शैली में प्रस्तुत किया जो उनकी लोकप्रियता का एक महत्वपूर्ण कारण रहा।

अपनी विलक्षण प्रतिभा के द्वारा उन्होंने 32 वर्ष की अल्पायु में ही अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की और अद्वैत वेदांत के सिद्धांत को स्थापित किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि वैदिक धर्म ही सभी धर्मों और संप्रदायों से श्रेष्ठ है और स्वयं अद्वैतवादी होते हुए भी उन्होंने सभी की तार्किक व उचित मान्यताओं को महत्व देते हुए अपने तर्कपूर्ण और अकाट्य प्रमाणों से इसे श्रेष्ठ सिद्ध किया है। उन्होंने सभी प्रकार के आवरणों को हटाते हुए वेदान्त दर्शन को पुनर्प्रतिष्ठित करते हुए अद्वैत वेदांत का सिद्धांत दिया और इसके प्रचार-प्रसार के लिए संन्यासी संघ की स्थापना की। यह सिद्धांत आज भी भारतीय दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस प्रकार उन्होंने हिंदू समाज को जाग्रत करके मृतप्राय हो चुके वैदिक हिंदू धर्म को पुनर्स्थापित करने में ही अपना सारा जीवन न्यौछावर कर दिया। उनके महत्व को स्पष्ट करते हुए 'शंकर दिग्विजय' के रचनाकार माध्वाचार्य ने कहा था— 'शंकराचार्य जैसे महान दार्शनिक के महत्वांकन में मैं उसी प्रकार हास्य का पात्र बनूँगा, जिस प्रकार बालक अपने हाथों से चंद्रमा को पकड़ने का उद्योग करके उपहासास्पद बनता है।' हिंदू धर्म के पुनरुत्थान में उनके योगदान का भारतीय जनमानस सदैव ऋणी रहेगा।

संदर्भ—ग्रंथ—

1. मिश्र, जयराम — 'आदि शंकराचार्य—जीवन और दर्शन' — लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) (2008)
2. उपाध्याय, बलदेव — 'श्री शंकराचार्य' — हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) (2003)
3. शर्मा, चंद्रधर — 'भारतीय दर्शन—आलोचन और अनुशीलन' — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (1998)
4. स्वामी, अपूर्वानंद — 'आचार्य शंकर' — रामकृष्ण मठ, नागपुर (महाराष्ट्र) (2002)
5. पाण्डेय, गोविंद चंद्र — 'शंकराचार्य— विचार और संदर्भ' — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1992)
6. शर्मा, उमादत्त — 'शंकराचार्य' (इंटरनेट पर उपलब्ध) — दी पोपुलर ट्रेडिंग कंपनी, कलकत्ता (संवत् 1988)
7. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (डॉ.) — 'भारतीय दर्शन' — राजपाल एंड संस, नई दिल्ली (2015)
8. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद (प्रो.) — 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा' — मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (2018)